वैज्ञानिक स्वभाव और वैज्ञानिकों की भूमिका

डॉ. राघवेंद्र गडग्कर

यह लेख एक पैनल चर्चा "वैज्ञानिक स्वभावः ज्ञान आधारित समाज की पूर्व-शर्त" के दौरान किए गए प्रस्तुतीकरण पर आधारित है। इस पैनल चर्चा का आयोजन राज्य सभा टेलीविजन (आरएसटीवी), सीएसआईआर-निसकेयर और विज्ञान प्रसार द्वारा 10 जनवरी 2016 के दिन किया गया था। इसे *जर्नल ऑफ साइन्टिफिक टेम्पर* के जनवरी-मार्च तथा अप्रैल-जून के अंक में और फिर *कॉन्फ्लुएन्स* में प्रकाशित किया गया था।

राघवेंद्र गडग्कर वैकासिक जीव विज्ञान के प्रोफेसर हैं और भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी, नई दिल्ली के भूतपूर्व अध्यक्ष हैं।

वैज्ञानिक स्वभाव वास्तव में एक आदत है कि अंधविश्वास और अलौकिक शक्तियों को न मानें और निष्कर्ष तक पहुंचने और निर्णय लेने के लिए सबूतों, कारणों और तर्कों का सहारा लें। हमारे समाज में वैज्ञानिक स्वभाव की कमी क्यों है, क्यों अंधविश्वास और आस्थाएं इतने प्रचलित हैं, और हम इसके बारे में क्या कर सकते हैं? मेरी दलील है कि इसके लिए वैज्ञानिक और 'गैर-वैज्ञानिक' दोनों ही ज़िम्मेदार हैं। मैं जल्द ही दलील देने वाला हूं कि लोगों को 'वैज्ञानिक' और 'गैर-वैज्ञानिक' के समूहों में बांटना बेतुका है और इसे समाप्त कर दिया जाना चाहिए। फिर भी मैं इस वर्गीकरण का उपयोग कर रहा हूं, तो एक और बात और कहना चाहता हूं। एक कामकाजी वैज्ञानिक के रूप में, मैं गैर-वैज्ञानिकों पर दोषारोपण की बजाय आरोपों के उस हिस्से पर बात करना चाहूंगा जो वैज्ञानिकों के पाले में है और वैज्ञानिक किस तरह स्थिति में बदलाव लाने में मदद कर सकते हैं। इस सम्बंध में मैं तीन बातें कहना चाहता हूं।

1. मेरा पहला मुद्दा यह है कि दुर्भाग्य से हम विज्ञान को केवल ज्ञान के एक भंडार के रूप में प्रस्तुत करते हैं। विज्ञान ज्ञान का एक भंडार है, लेकिन मेरी राय में यह एक संयोग ही है। विज्ञान मुख्य रूप से पद्धतियों का एक समुच्चय है, औज़ारों का एक किट है जिसका उपयोग हम ज्ञान उत्पन्न करने के लिए करते हैं। विज्ञान की पद्धति में हम अवलोकन और प्रयोग करते हैं और निर्णय लेने के लिए सबूत, तर्क और आंतरिक सुसंगति का उपयोग करते हैं। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि हमें सभी चीज़ों पर सवाल करने और बार-बार सवाल करने की अनुमति होती है; कोई अंतिम अधिकारी नहीं है और न ही कोई अंतिम जवाब। इस प्रकार विज्ञान के क्षेत्र में कार्य हमेशा प्रगति पर होता है; सभी जवाब अस्थायी होते हैं और उन पर कोई भी किसी भी समय प्रश्न उठा सकता है। यही विज्ञान की विधि है, लेकिन हम विज्ञान को इस रूप में प्रस्तुत नहीं करते।

हम अपने विद्यालयों में वैज्ञानिक पद्धति नहीं सिखाते हैं। इसकी बजाय हम अपने बच्चों पर तथ्यों का बोझ डालते चले जाते हैं। हम तथ्यों से भरी पुस्तकों से भरा बैग उनकी पीठ पर डाल तो देते हैं, लेकिन उन्हें यह नहीं बताते कि इन सारे तथ्यों को (या वास्तव में किसी भी तथ्य को) हमने कैसे जाना। अगर आप एक हाई स्कूल के छात्र, जिसने 10वीं कक्षा उत्तीर्ण की है, या उसके शिक्षक से वैज्ञानिक पद्धति के बारे में पूछें, तो मुझे लगता है कि वे मुश्किल में पड़ जाएंगे। समस्या की शुरुआत यहीं से होती है। और समस्या तब भी ज़ारी रहती है जब वैज्ञानिक आपस में बातचीत करते हैं; हम ज़्यादातर अपने अनुसंधान के उत्पादों यानी निष्कर्षों का वर्णन करने में व्यस्त रहते हैं और उन तरीकों पर पर्याप्त ज़ोर नहीं देते जिनके द्वारा हमने उन उत्पादों को प्राप्त किया है। मेरा मत है कि विज्ञान की प्रक्रिया, उत्पाद की तुलना में कहीं अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि हो सकता है कि उत्पाद में केवल कुछ विशेषज्ञों की रुचि हो लेकिन प्रक्रिया में लोगों के बड़े समूह की रुचि होना चाहिए।

यदि आप वैज्ञानिकों से किसी अन्य वैज्ञानिक की खोज के बारे में पूछेंगे, तो वे आपको बहुत कुछ बता देंगे, लेकिन अगर आप यह पूछेंगे कि यह खोज कैसे की गई तो वे

आपको बहुत ही कम बता पाएंगे। एक उदाहरण के रूप में, मैं अपने स्वयं के अनुसंधान क्षेत्र (जंतु व्यवहार का अध्ययन) को लेता हूं। तो मुझे भले ही आनुवंशिकीविदों, महामारी विज्ञानियों, मनोवैज्ञानिकों, मानव विज्ञानियों, समाजशास्त्रियों, अर्थशास्त्रियों, इतिहासकारों और यहां तक कि राजनीति वैज्ञानिकों के वास्तविक निष्कर्षों से कोई सरोकार न हो लेकिन मुझे उनके द्वारा प्रयुक्त ज्ञान उत्पादन के तरीकों से बहुत कुछ सीखना है।

दावा कुछ भी हो सकता है: जैसे, कल बारिश की संभावना 70 प्रतिशत है, या मंगल ग्रह पर पानी है, या धरती 4.5 अरब वर्ष पुरानी है, या फिर किसी ने हिग्स बोसॉन की खोज की है या थोड़ी-सी रेड वाइन हृदय रोग के जोखिम को कम करती है। इनके संदर्भ में हममें से कई लोग विज्ञान की भविष्यवाणियों पर आंख मूंदकर भरोसा करते हैं। वैज्ञानिकों का कहना है, इसलिए यह सच ही होगा - वैज्ञानिक बलपूर्वक आग्रह करते हैं और हम चुपचाप स्वीकार कर लेते हैं कि हम इन दावों के पीछे के तर्क को नहीं समझ सकते हैं। यह विज्ञान को पौराणिक कथाओं एवं अंधविश्वास के बराबर बना देता है। जो लोग पौराणिक कथाओं और अंधविश्वास को धार्मिक निष्ठा के रूप में मानते हैं, मुझे नहीं लगता कि वे उन लोगों से तनिक भी भिन्न हैं जो वैज्ञानिक दावों को आंख मूंदकर मान लेते हैं।

इतनी ही गंभीर एक दूसरी समस्या है। जब वैज्ञानिकों द्वारा किए गए दावों को विश्वास के आधार पर स्वीकार किया जाता है तो उन दावों के साथ जुड़ी त्रुटि की संभावना और विफलता के जोखिमों के अनुमान दिखाई नहीं देते हैं। हम सच और झूठ के स्पष्ट विभाजन की एक काल्पनिक दुनिया में रहते हैं। जब भविष्यवाणी के अनुसार बारिश हो जाती है तो हम वैज्ञानिकों की प्रशंसा करते हैं और जब इसके विपरीत बारिश न होने की भविष्यवाणी के बावजूद बारिश हो जाती है, तो हम वैज्ञानिकों की आलोचना करने लगते हैं और उनको लेकर शंकालु हो जाते हैं। यदि वैज्ञानिक पद्धति पर, वैज्ञानिक दावों के पीछे के तर्क पर चर्चा होगी, चाहे कितनी भी प्रारंभिक हो, तो ऐसे दावों में निहित जोखिम और दावों की संभाविता-आधारित प्रकृति को सराहने में मदद मिलेगी। दरअसल, मेरा मानना है कि इससे वैज्ञानिकों और वैज्ञानिक पद्धति के प्रति प्रशंसा पैदा होगी, यहां तक कि विफलता के संदर्भ में भी। ज़रा साढ़े पांच करोड़ कि.मी. दूर एक गतिशील लक्ष्य (मंगल) पर एक अंतरिक्ष यान को उतारने के काम की जटिलता और साहसिकता पर विचार करें। या फिर यह देखें कि कल के मौसम की भविष्यवाणी करने के लिए अरबों संख्याओं को लेकर उनकी खरबों संक्रियाओं का काम भी उतना ही पेचीदा और साहसिक होता होगा!

2. मेरा दूसरा मुद्दा, जिसका मैं पहले ही संकेत दे चुका हूं, यह है कि हमें वैज्ञानिकों और गैर-वैज्ञानिकों के बीच के अंतर को दूर करना चाहिए। मैं इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ साइंस में प्रोफेसर हूं। मैंने विज्ञान में पीएच.डी. हासिल की है, विज्ञान के कोर्स पढ़ाता हूं, इंडियन नेशनल साइंस एकेडमी का अध्यक्ष रह चुका हूं। तो, इन सभी विवरणों से मैं एक वैज्ञानिक हूं। लेकिन क्या यह हमेशा सच होता है? क्या मैं 24x7 एक वैज्ञानिक हूं? क्या मैं सभी कार्यों के लिए वैज्ञानिक तरीकों का उपयोग करता हूं? इसका दो टूक जवाब है, 'नहीं'। जब यह निर्णय करना होता है कि कौन-सा संगीत सुनूं या किस रेस्तरां में खाना खाऊं या किस रंग की शर्ट पहनूं, तब मैं वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग नहीं करता। 'वैज्ञानिक' कभी-कभी वैज्ञानिक विधि का प्रयोग करते हैं, हमेशा नहीं। इसी तरह, 'गैर-वैज्ञानिकों' को भी हमेशा न सही, कभी-कभी वैज्ञानिक विधि का उपयोग करना चाहिए।

इससे सवाल उठता है कि हमें वैज्ञानिक पद्धति का इस्तेमाल कब करना चाहिए और कब इसकी आवश्यकता नहीं है। अगर हम यह जानना चाहते हैं कि क्या धूम्रपान से कैंसर का खतरा बढ़ता है, तो हमें वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग करना चाहिए; अगर हम यह तय करना चाहते हैं कि क्या रेड वाइन के थोड़े-से सेवन से हृदय रोग का खतरा कम होता है, तो हमें वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग करना चाहिए; अगर हमें यह सीखना है कि चन्द्रमा पर यान कैसे उतारें, तो हमें वैज्ञानिक पद्धति की आवश्यकता है और अगर हमें यह तय करना है कि क्या भारतीय लोग हज़ारों

साल पहले ग्रहों के बीच यात्रा किया करते थे, तो भी हमें वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग करना चाहिए। मेरा यह कहना बिलकुल सही होगा कि मुझे कर्नाटक संगीत की तुलना में हिंदुस्तानी संगीत ज़्यादा पसंद है, और इसका वैज्ञानिक औचित्य देने की कोई ज़रूरत नहीं है। लेकिन मेरे लिए यह कहना सही नहीं होगा कि आनुवांशिक रूप से परिवर्तित (जीएम) फसलें हमारे लिए खराब हैं या वास्तव में यह कहना भी सही नहीं होगा कि जीएम फसलें हमारे लिए अच्छी हैं। इस मामले में हमें वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग करने की आवश्यकता है। जहां कहीं भी आवश्यकता हो, हम सभी को वैज्ञानिक विधि का उपयोग करना चाहिए, चाहे हम तथाकथित वैज्ञानिक या तथाकथित गैर-वैज्ञानिक ही क्यों न हों। वैज्ञानिकों और गैर-वैज्ञानिकों के बीच का अंतर बेतुका है। इसके अलावा इस भेदभाव से समाज में अनावश्यक और बेकार की ऊंच-नीच पैदा होती है। यह कहने का कोई अर्थ नहीं है कि वैज्ञानिक लोग जीएम फसलों को अच्छा मानते हैं और गैर-वैज्ञानिक लोग खराब। जीएम फसलों के अच्छे या बुरे के बारे में हमारा फैसला साक्ष्य पर आधारित होना चाहिए न कि आस्था पर। अगर इस बात का खुलकर प्रचार किया जाए कि पेशेवर वैज्ञानिक भी 24/7 वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग नहीं करते हैं तो यह वैज्ञानिकों और गैर-वैज्ञानिकों के बीच कथित भेदभाव को तोड़ने में मददगार होगा।

3. अभी तक की चर्चा मुझे स्वाभाविक रूप से तीसरे बिंदु की ओर ले जाती है। वह तीसरा बिंदु यह है कि हमें ऐसी स्थितियां पैदा करनी चाहिए, जहां वैज्ञानिक पद्धति के उपयोग की आवश्यकता होने पर हर कोई वैज्ञानिक हो सके, और जब यह आवश्यक न हो तब हर कोई गैर-वैज्ञानिक बन सके। अगर हम यह चाहते हैं कि सभी लोग प्रमाण-आधारित निर्णय लें, तो हमें यह संभव बनाना होगा कि सभी की सबूतों तक पहुंच हो और सब उन्हें समझने में सक्षम बनें। यही कारण है कि हमें विज्ञान को पद्धतियों के एक समुच्चय के रूप में सिखाना चाहिए, न कि तथ्यों के ऐसे भंडार के रूप में, जिसकी खोज वैज्ञानिकों ने जादुई ढंग से की है और उसमें विश्वास करने लगे हैं। तभी हम समाज में वैज्ञानिक स्वभाव विकसित कर सकते हैं और अंध विश्वास को दूर कर सकते हैं। विज्ञान शिक्षा ने स्कूली बच्चों को सशक्त बनाना चाहिए ताकि जब यह बताया जाए कि गणेश की मूर्ति ने दूध पीना शुरू कर दिया है, तो वे वैज्ञानिक तरीके - अवलोकन, प्रयोग, तर्क, आंतरिक सुसंगति और सवाल पूछने तथा शंका के मनोभाव का उपयोग करके - यह तय कर सकें कि यह संभव है या नहीं। समाज में वैज्ञानिक स्वभाव को बढ़ावा देने के लिए वैज्ञानिक काफी कुछ कर सकते हैं। ***(स्रोत फीचर्स)***

संपादन एवं संचालन
एकलव्य
ई-10 शंकर नगर बी.डी.ए. कॉलोनी,
शिवाजी नगर, भोपाल (म.प्र.) 462 016
फोनः 0755-2550976 0755-2671017
ई-मेल : srote@eklavya.in, srotefeatures@gmail.com

स्रोत
विज्ञान एवं टेक्नॉलॉजी फीचर्स
मई 2018
वर्ष-12 अंक-05 (पूर्णांक 352)

www.eklavya.in

हमारे समाज में वैज्ञानिक स्वभाव की कमी क्यों और वैज्ञानिक इसके बारे में क्या कर सकते हैं?

राघवेंद्र गडग्कर

वैज्ञानिक स्वभाव वास्तव में एक आदत है कि अंधविश्वास और अलौकिक शक्तियों को न मानें और निष्कर्ष तक पहुंचने और निर्णय लेने के लिए सबूतों, कारणों और तर्कों का सहारा लें। हमारे समाज में वैज्ञानिक स्वभाव की कमी क्यों है, क्यों अंधविश्वास और आस्थाएं इतने प्रचलित हैं, और हम इसके बारे में क्या कर सकते हैं? मेरी दलील है कि इसके लिए वैज्ञानिक और 'गैर-वैज्ञानिक' दोनों ही ज़िम्मेदार हैं। मैं जल्द ही दलील देने वाला हूं कि लोगों को 'वैज्ञानिक' और 'गैर वैज्ञानिक' के समूहों में बांटना बेतुका है और इसे समाप्त कर दिया जाना चाहिए। फिर भी मैं इस वर्गीकरण का उपयोग कर रहा हूं, तो एक और बात और कहना चाहता हूँ। एक कामकाजी वैज्ञानिक के रूप में, मैं गैर-वैज्ञानिकों पर दोषारोपण की बजाय आरोपों के उस हिस्से पर बात करना चाहूंगा जो वैज्ञानिकों के पाले में है और वैज्ञानिक किस तरह स्थिति में बदलाव लाने में मदद कर सकते हैं। इस संबंध में मैं तीन बातें कहना चाहता हूं।

1. मेरा पहला मुद्दा यह है कि दुर्भाग्य से हम विज्ञान को केवल ज्ञान के एक भंडार के रूप में प्रस्तुत करते हैं। विज्ञान ज्ञान का एक भंडार है, लेकिन मेरी राय में यह संयोग ही है। विज्ञान मुख्य रूप से पद्धतियों का एक समुच्चय है, औज़ारों एक किट है जिसका उपयोग हम ज्ञान उत्पन्न करने के लिए करते हैं। विज्ञान की पद्धति में हम अवलोकन और प्रयोग करते हैं और निर्णय लेने के लिए सबूत, तर्क और आंतरिक सुसंगति का उपयोग करते हैं। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि हमें सभी चीज़ों पर सवाल करने और बार-बार सवाल करने की अनुमति होती है; कोई अंतिम अधिकारी नहीं है और न ही कोई अंतिम जवाब। इस प्रकार विज्ञान के क्षेत्र में कार्य हमेशा प्रगति पर होता है; सभी जवाब अस्थायी होते हैं और उन पर कोई भी किसी भी समय प्रश्न उठा सकता है। यही विज्ञान की विधि है, लेकिन हम विज्ञान को इस रूप में प्रस्तुत नहीं कर रहे हैं।

हम अपने विद्यालयों में वैज्ञानिक पद्धति नहीं सिखाते हैं। इसकी बजाय हम अपने बच्चों पर तथ्यों का बोझ डालते चले जाते हैं। हम तथ्यों से भरी पुस्तकों से भरा बैग उनकी पीठ पर डाल तो देते हैं, लेकिन उन्हें यह नहीं बताते कि इन सारे तथ्यों को या वास्तव में किसी भी तथ्य को हमने कैसे जाना। अगर आप एक हाई स्कूल के छात्र, जिसने 10 वीं कक्षा उत्तीर्ण की है, या उसके शिक्षक से वैज्ञानिक पद्धति के बारे में पूछें, तो मुझे लगता है कि मुश्किल में पड़ जाएंगे। समस्या की शुरुआत यहीं से होती है। और समस्या तब भी जारी रहती है जब वैज्ञानिक आपस में बातचीत करते हैं; हम ज्यादातर अपने अनुसंधान के उत्पादों यानी निष्कर्षों का वर्णन करने में व्यस्त रहते हैं और उन तरीकों पर पर्याप्त जोर नहीं देते जिनके द्वारा हमने उन उत्पादों को प्राप्त किया है। मेरा मत है कि विज्ञान की प्रक्रिया, उत्पाद की तुलना में कहीं अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि उत्पाद में केवल कुछ विशेषज्ञों की रुचि हो सकती है लेकिन प्रक्रिया में लोगों के बड़े समूह को रुचि होना चाहिए। यदि आप वैज्ञानिकों से किसी अन्य वैज्ञानिक की खोज के बारे में पूछेंगे, तो वे आपको बहुत कुछ बता देंगे, लेकिन अगर आप यह पूछेंगे कि यह खोज कैसे की गई तो वे आपको बहुत ही कम बता पाएंगे। एक उदाहरण के रूप में मैं अपने स्वयं के अनुसंधान क्षेत्र (जंतु व्यवहार का अध्ययन) को लेता हूँ। तो मुझे भले ही आनुवंशिकीविदों, महामारी विज्ञानियों, मनोवैज्ञानिकों, मानव विज्ञानियों, समाजशास्त्रियों, अर्थशास्त्रियों, इतिहासकारों और यहां तक कि राजनीति वैज्ञानिकों के वास्तविक निष्कर्षों से कोई सरोकार न हो लेकिन मुझे उनके द्वारा प्रयुक्त ज्ञान उत्पादन के तरीकों से बहुत कुछ सीखना है।

दावा कुछ भी हो सकता हैः जैसे, कल बारिश की संभावना 70 प्रतिशत है, या मंगल ग्रह पर पानी है, या धरती 4.5 अरब वर्ष पुरानी है, या फिर किसी ने हिग्स बोसॉन की खोज की है या थोड़ा सा रेड वाइन हृदय रोग के जोखिम को कम करता है। इनके संदर्भ में हममें से कई लोग विज्ञान की भविष्यवाणियों पर आंख मूंदकर भरोसा करते हैं। वैज्ञानिकों का कहना है इसलिए यह सच ही होगा - वैज्ञानिक बलपूर्वक आग्रह करते हैं और हम चुपचाप स्वीकार कर लेते हैं कि हम इन दावों के पीछे के तर्क को नहीं समझ सकते हैं। यह विज्ञान को पौराणिक कथाओं एवं अंधविश्वास के बराबर बना देता है। जो लोग पौराणिक कथाओं और अंधविश्वास को धार्मिक निष्ठा के रूप में मानते हैं, उन्हें नहीं लगता कि वे उन लोगों से तनिक भी भिन्न हैं जो वैज्ञानिक दावों को आंख मूंदकर मान लेते हैं।

इतनी ही गंभीर एक दूसरी समस्या है। जब वैज्ञानिकों द्वारा किए गए दावों को विश्वास के आधार पर स्वीकार किया जाता है तो उन दावों के साथ जुड़ी त्रुटि की संभावना और विफलता के जोखिमों के अनुमान दिखाई नहीं देखे देते हैं। हम सच और झूठ के स्पष्ट विबाजन की एक काल्पनिक दुनिया में रहते हैं। जब भविष्यवाणी के अनुसार बारिश हो जाती है तो हम वैज्ञानिकों की प्रशंसा करते हैं और जब इसके विपरीत बारिश न होने की भविष्यवाणी के बावजूद बारिश हो जाती है, तो हम वैज्ञानिकों की आलोचना करते हैं और उनको लेकर शंकालु हो जाते हैं। यदि वैज्ञानिक पद्धति पर, वैज्ञानिक दावों के पीछे के तर्क पर चर्चा होगी, चाहे कितनी भी प्रारंभिक हो, तो ऐसे दावों में निहित जोखिम और दावों की संभाविता-आधारित प्रकृति को सराहना में मदद मिलेगी।

वास्तव में, मेरा मानना है कि इससे वैज्ञानिकों और वैज्ञानिक पद्धति के प्रति प्रशंसा पैदा होगी, यहां तक विफलता के संदर्भ में भी। ज़रा साढ़े पांच करोड़ किमी दूर एक गतिशील लक्ष्य (मंगल) पर एक अंतरिक्ष यान को उतारने के काम की जटिलता और साहसिकता पर विचार करें। या फिर यह देखें कि कल के मौसम की भविष्यवाणी करने के लिए अरबों संख्याओं को लेकर उनकी खरबों संक्रियाओं का काम भी उतना ही पेचीदा और साहसिक होता होगां!

2. मेरा दूसरा मुद्दा, जिसका मैं पहले ही संकेत दे चुका हूँ, यह है कि हमें वैज्ञानिकों और गैर-वैज्ञानिकों के बीच के अंतर को दूर करना चाहिए। मैं इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ़ साइंस में प्रोफेसर हूं। मैंने विज्ञान में पीएच.डी. हासिल की है। मैं विज्ञान के कोर्स पढ़ाता हूं। मैं इंडियन नेशनल साइंस एकेडमी का अध्यक्ष रह चुका हूं। तो, इन सभी विवरणों से मैं एक वैज्ञानिक हूं। लेकिन क्या यह हमेशा सच होता है? क्या मैं 24/7 एक वैज्ञानिक हूं? क्या मैं सभी कार्यों के लिए वैज्ञानिक तरीकों का उपयोग करता हूं? इसका दोटूक जवाब है, 'नहीं'। जब मैं यह निर्णय लेता हूं कि मैं कौन-सा संगीत सुनना चाहता हूं या किस रेस्तरां में खाना खाऊं या किस रंग की शर्ट पहनूं, तब मैं वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग नहीं करता। तथाकथित

वैज्ञानिक कभी-कभी वैज्ञानिक तरीके का प्रयोग करते हैं लेकिन हमेशा नहीं। इसी तरह, तथाकथित गैर-वैज्ञानिकों को भी हमेशा न सही, कभी-कभी वैज्ञानिक विधि का उपयोग करना चाहिए।

इससे सवाल उठता है कि हमें वैज्ञानिक पद्धति का इस्तेमाल कब करना चाहिए और कब इसकी आवश्यकता नहीं है। अगर हम यह जानना चाहते हैं कि क्या धूम्रपान से कैंसर का खतरा बढ़ता है, तो हमें वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग करना चाहिए; अगर हम यह तय करना चाहते हैं कि क्या रेड वाइन के थोड़े से सेवन से हृदय रोग का खतरा कम होता है, तो हमें वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग करना चाहिए; अगर हमें यह सीखना है कि चन्द्रमा पर यान कैसे उतारें, तो हमें वैज्ञानिक पद्धति की आवश्यकता है और अगर हमें यह तय करना है कि भारतीयों ने हजारों साल पहले ग्रहों के बीच यात्रा किया करते थे, तो भी हमें वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग करना चाहिए। मेरा यह कहना बिल्कुल सही होगा कि मुझे कर्नाटक संगीत की तुलना में हिंदुस्तानी संगीत ज़्यादा पसंद है, और इसका वैज्ञानिक औचित्य देने की कोई ज़रूरत नहीं है। लेकिन मेरे लिए यह कहना सही नहीं होगा कि आनुवांशिक रूप से परिवर्तित (जीएम) फसलें हमारे लिए खराब हैं या वास्तव में यह कहना भी सही नहीं होगा कि जीएम फसलें हमारे लिए अच्छी हैं। इस मामले में हमें वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग करने की आवश्यकता है। जहां कहीं भी आवश्यकता हो, हम सभी को वैज्ञानिक विधि का उपयोग करना चाहिए, चाहे हम तथाकथित वैज्ञानिक या तथाकथित गैर-वैज्ञानिक ही क्यों न हों। वैज्ञानिकों और गैर-वैज्ञानिकों के बीच का अंतर बेतुका है। इसके अलावा इस भेदभाव से समाज में अनावश्यक और बेकार की ऊंच-नीच पैदा होती है। यह कहने का कोई अर्थ नहीं है कि वैज्ञानिक लोग जीएम फसलों को अच्छा मानते हैं और गैर वैज्ञानिक लोग खराब। जीएम फसलों के अच्छे या बुरे के बारे में हमारा फैसला साक्ष्य पर आधारित होना चाहिए न कि आस्था पर। अगर इस बात का खुलकर प्रचार किया जाए कि पेशेवर वैज्ञानिक भी 24/7 वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग नहीं करते हैं तो वैज्ञानिकों और गैर-वैज्ञानिकों के बीच कथित भेदभाव को तोड़ने में मददगार होगा।

3. अभी तक की चर्चा मुझे स्वाभाविक रूप से तीसरे बिंदु की ओर ले जाती है। वह तीसरा बिंदु यह है कि हमें ऐसी स्थितियां पैदा करनी चाहिए, जहां वैज्ञानिक पद्धति के उपयोग की आवश्यक होने पर हर कोई वैज्ञानिक हो सके, और जब यह आवश्यक न हो तब हर कोई गैर-वैज्ञानिक बन सके। अगर हम यह चाहते हैं कि सभी लोग प्रमाण-आधारित निर्णय लें, तो हमें यह संभव बनाना होगा कि सभी की सबूतों तक पहुंच हो और सब उन्हें समझने में सक्षम बनें। यही कारण है कि हमें विज्ञान को पद्धतियों के एक समुच्चय के रूप में सिखाना चाहिए, न कि तथ्यों के ऐसे भंडार के रूप में, जिसकी खोज वैज्ञानिकों ने जादुई ढंग से की है और उसमें विश्वास करने लगे। तभी हम समाज में वैज्ञानिक स्वभाव विकसित कर सकते हैं और अंध विश्वास को दूर कर सकते हैं। विज्ञान शिक्षा ने स्कूली बच्चों को सशक्त बनाना चाहिए ताकि जब यह बताया जाए कि गणेश की मूर्ति ने दूध पीना शुरू कर दिया है, तो वे वैज्ञानिक तरीके - अवलोकन, प्रयोग, तर्क, आंतरिक सुसंगति और सवाल पूछने तथा शंका के मनोभाव का उपयोग करके - यह तय कर सकें कि यह संभव है या नहीं। समाज में वैज्ञानिक स्वभाव को बढ़ावा देने के लिए वैज्ञानिक काफी कुछ कर सकते हैं।

यह लेख एक पैनल चर्चा □वैज्ञानिक स्वभावः ज्ञान आधारित समाज की पूर्व-शर्त□ के दौरान किए गए प्रस्तुतीकरण पर आधारित है। इस पैनल चर्चा का आयोजन राज्य सभा टेलीविजन (आरएसटीवी), सीएसआईआर-निसकेयर और विज्ञान प्रसार द्वारा 10 जनवरी 2016 के दिन किया गया था।

राघवेंद्र गडक्कर वैकासिक जीवविज्ञान के प्रोफेसर हैं और भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी, नई दिल्ली के भूतपूर्व अध्यक्ष हैं।